विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल-२, मंगलवार, तारीख १२-८-१९८०
वचनामृत-३७, ३८, ४५ प्रवचन-५

'मैं अबद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ', यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं, शान्ति नहीं मिलती; विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभाव में लीन होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है॥ ३७॥

वचनामृत, ३७वाँ बोल, ३७। थोड़ी सूक्ष्म बात है। मूल की बात है न। **'मैं अबद्ध हूँ',...** धर्मी विचार करता है, समकित प्राप्त करने के लायक। वह ऐसा विचार करता है कि मैं तो अबद्ध हूँ। अर्थात् मैं मुक्त हूँ। अबद्ध नास्ति से है, मुक्त अस्ति से है। मैं मुक्तस्वरूप हूँ। आहाहा! वह पुरुषार्थ कब काम करे? मैं पूरी दुनिया से भिन्न, राग से भिन्न, एक समय की पर्याय से भी भिन्न... आहाहा! ऐसा मैं अबद्ध हूँ।

'ज्ञायक हूँ',... मैं तो त्रिकाल जाननेवाला हूँ। **यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं,..** आहाहा! जिसको ऐसा विकल्प भी दुःखरूप लगे, वह समकित ढूंढ़ने को अन्दर जाए। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि बाहर से मिल जाए। आहाहा! अबद्ध और ज्ञायक हूँ, ऐसा जो विकल्प-राग की वृत्ति उठती है, वह भी दुःखरूप है। है शुभ, परन्तु है राग, है, दुःखरूप। शुभ और अशुभराग दोनों दुःखरूप है। भगवान आत्मा अन्दर मुक्तस्वरूप, आनन्दस्वरूप है। तो जिसको सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है, धर्म की प्रथम सीढ़ी, धर्म का प्रथम सोपान। आहाहा! अबद्ध और ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प भी दुःखरूप लगता है। आहाहा! ऐसी वृत्ति उठती है अन्दर में, उसको विकल्प कहते हैं परन्तु वह विकल्प दुःखरूप है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय है। उससे, मैं अबद्ध हूँ, ऐसा विकल्प उठे, वह भी दुःखरूप है। आहाहा! धर्म कोई अलौकिक बात है, प्रभु! आहाहा!

यह विकल्प भी दु:खरूप लगते हैं,... 'भी' क्यों कहा ? दूसरी चीज़ तो दु:ख में निमित्त है ही, परन्तु यह विकल्प भी दु:खरूप है। आहाहा! मैं ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ, ऐसी वृत्ति अन्दर में उठती है, वह भी दु:खरूप (है)। स्वभाव से भिन्न है। **शान्ति नहीं मिलती;...** ऐसी विकल्प की भूमिका में शान्ति नहीं है। शान्ति तो विकल्प से भिन्न होकर अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द में आवे, तब उसको शान्ति मिलती है। तब तक सब अशान्ति वेदता है। करोड़पति हो या अरबपति हो, सब दु:खी है। आहाहा! यहाँ तो मैं अबद्ध हूँ, ऐसा विकलप उठाये, वह भी दु:खी है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! करोड़पति और अरबपति बड़े दु:खी हैं। अफ्रीका में देखा था न। अभी अफ्रीका गये थे न। ४५० तो वहाँ करोड़पति है। नैरोबी में। हम गये थे, २६ दिन। लोगों को प्रेम बहुत था, बहुत प्रेम था। ४५० करोड़पति और १५ अरबपति। सब आते थे। मैंने कहा, वह सब धूल है। वह मेरी है, ऐसी मान्यता, जड़ मेरा है, ऐसी मान्यता ही मिथ्यादृष्टि की है। जीव-अजीव को अपना माने.. आहाहा! कठिन काम है। जीव-भगवान मुक्तस्वरूप बाह्य चीज़ को अपनी माने, वह मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व है, अशान्ति है, वहाँ दु:ख है।

शान्ति नहीं मिलती; विकल्पमात्र में दु:ख ही दु:ख भासता है,... ये तो बहिन के वचन हैं। बहुत संक्षेप में बोले थे, उसे लिख लिया है। अतीन्द्रिय आनन्द में अनुभव में आकर यह सब शब्द बाहर आये हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेकर। बहिन अलौकिक चीज़ है! लोगों को ख्याल नहीं आये। मुर्दे जैसा लगे। अन्दर में तो एकदम अकेला आनन्द.. आनन्द.. आनन्द (है)। उनके शब्द में, विकल्पमात्र को दु:खरूप कहकर... आहाहा! सब दु:ख भासता है। **तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...** क्या कहते हैं ? अपना स्वभाव शरीर, वाणी, मन तो नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, वह तो नहीं; मैं ऐसा हूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है, उसे छोड़ने को अपूर्व पुरुषार्थ चाहिए, प्रभु! अपूर्व पुरुषार्थ चाहिए। अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं किया। बाकी सब व्यर्थ किया। क्रियाकाण्ड उतनी की। नौवीं ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' सुख नहीं प्राप्त किया। पंच महाव्रत दु:ख है। पंच महाव्रत के परिणाम राग और आस्रव और दु:ख है। आहाहा! उससे भिन्न अनन्त बार ऐसी क्रिया की और ग्यारह अंग का जानपना भी अनन्त बार किया। परन्तु मैं निर्विकल्प वस्तु अखण्डानन्द

प्रभु मुक्तस्वरूप हूँ, ऐसा अनुभव कभी किया नहीं। आहाहा! कहीं-कहीं अटकता है, रुकता है। आहाहा!

अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर... प्रभु! तुझे उस विकल्प में दुःख लगे, मैं ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ, ऐसे विकल्प में यदि दुःख लगे, दुःख ख्याल में आये तो **अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...** आहाहा! **वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...** भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त चैतन्यरत्नाकर, अनन्त चैतन्य के रत्न से भरा भगवान। आहाहा! जिसके पास इन्द्र के इन्द्रासन सड़ा हुआ तिनका और मरकर बिल्ली सड़ गई हो, ऐसे इन्द्र के इन्द्रासन समकित के समक्ष ऐसे लगते हैं। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि यदि तुझे उस विकल्प में दुःख लगे तो **वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...** अपना पुरुषार्थ करना। आहा..! भाषा तो और क्या करे? आहाहा! विकल्पमात्र राग, उससे छूटकर अन्तर में अपूर्व पुरुषार्थ करे, राग से हटकर, विकल्प से हटकर निर्विकल्प आनन्दस्वरूप प्रभु में लीन हो। आहा..! **लीन होने पर, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं...** आत्मार्थी जीव को। शर्त यह। आत्मार्थी-अपना आत्मा ही एक प्रयोजन है, दूसरा कुछ नहीं। आत्मा का ही मुझे प्रयोजन है, दूसरी कोई चीज़ नहीं। ऐसा आत्मार्थी है, उसको सब विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा! तब सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का प्रथम सोपान। सर्व विकल्प दुःखरूप लगे और अपूर्व पुरुषार्थ करे तो वस्तु में लीन हो जाए। आहा..! ऐसी कठिन बात है।

मुमुक्षु :- सब विकल्प छूट जाएगा तो जड़ हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्दर में आत्मा में लीन होना। विकल्प में है तो प्रभु दुःख में है। ... आया न? **वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...** आहाहा! भाई! मार्ग दूसरा है। अन्दर की रीत और अन्दर ... आहाहा! दुनिया को बाहर की प्रवृत्ति मिली है। अन्दर मुक्तस्वरूप भगवान विराजता है। सब भगवान है। अन्दर में शरीर से भिन्न, राग से भिन्न, एक समय की पर्याय जितना नहीं। ऐसा भगवान सबके अन्दर विराजता है। आहाहा! एक बार तू अपने भगवान के पास जा तो सही। आहाहा! अन्दर चैतन्यप्रभु विराजता है, उसके पास जाने से, लीन होने पर आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं। आहा..! वस्तुस्वभाव में अन्तर में लीन होने से सब विकल्प छूट जाते हैं और **आनन्द का वेदन होता है।** विकल्प

दु:ख है। सब विकल्प जब छूट जाते हैं, तब आनन्द आता है। वह आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द आये, वह आत्मा। अतीन्द्रिय आनन्द। ये इन्द्रिय के जो विषय हैं, करोड़ोंपति और अरबपति सब दु:खी हैं बेचारे। जहर का प्याला पीता है। इन्द्रिय के विषय जहर का प्याला है। आहाहा!

अभी अफ्रीका गये थे न। आफ्रीका में ४५० तो करोड़पति है और १५ अरबपति हैं। लोग तो बहुत आते थे। लोगों को प्रेम है न? महाजन लोगों को। कहा, सब दु:खी है। १५ तो अरबपति, ४५० करोड़पति। धूल है सब, कहा। यहाँ तो आत्मा में राग (आये कि), मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, अखण्ड हूँ, एक हूँ, ऐसा विकल्प उठाना भी दु:ख है। आहाहा! कठिन लगे, प्रभु! क्या हो?

बहिन की भाषा तो अनुभव में से आयी है। बहिनों ने (लिख लिया)। उनके नीचे ६४ बाल ब्रह्मचारी है। नौ बहनों ने लिख लिया। उनको तो मालूम भी नहीं था कि ये लिख लेंगे। उनको तो बाहर आने का बिल्कुल भाव नहीं है। अन्दर आनन्द के अनुभव में अनुभूति में रहती है।

यहाँ कहते हैं, आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं। आहाहा! अन्तर में जाने से सब विकल्प छूट जाते हैं और आनन्द का वेदन होता है। यह आत्मा है। विकल्प, वह आत्मा नहीं है। मैं शुद्ध, अबद्ध हूँ, ऐसा विकल्प आत्मा नहीं है। वह अनात्मा है। विकल्प जड़ है। है दु:खरूप है, लेकिन जड़ है। क्यों? कि चैतन्य का अंश उसमें नहीं है। विकल्प जो उठते हैं, उसमें चैतन्यप्रभु-चैतन्य प्रकाश की मूर्ति का अंश उसमें नहीं है और स्वयं को जानता नहीं, इसलिए जड़ है। आहाहा! विकल्प शुभराग जड़ है। वह चैतन्य नहीं। आहाहा! चैतन्य की ओर झुकने से तुझे आनन्द का वेदन होता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है, भैया!

मुमुक्षु :- यह तो एकान्त मार्ग हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- एकान्त मार्ग ही है। नय सम्यक् एकान्त ही है। पण्डितजी! नय है, सम्यक् एकान्त नय है।

मुमुक्षु :- नय सम्यक् एकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- प्रमाण में पर्याय आ जाती है, नय में नहीं। शुद्धनय में एकान्त पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनादि सत्ता, अनादि शुद्ध, अनादि परमपुरुष परमात्मा, ऐसी चीज़ आत्मा है। आहाहा! उसको प्राप्त करके आनन्द का वेदन होता है। ३७वाँ पूरा हुआ। आहाहा!

आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु, सद्‌गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है॥ ३८॥

३८। **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है,...** यह पहली शर्त। कोई चीज़ मुझे नहीं चाहिए, एक आत्मा चाहिए—ऐसा जिसका दृढ़ निश्चय है। **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है,...** आहाहा! यह शर्त। कोई भी कल्पना, चिन्ता कुछ नहीं चाहिए। दुनिया दुनिया में रही। मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है, ऐसा **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है,...** शर्त यह। दृढ़ निश्चय हुआ है, प्राप्त करने का। आहाहा!

उसे प्रतिकूल संयोगों में भी... उसे प्रतिकूल संयोग नरक आदि का हो। आहाहा! श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती है और तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं। भविष्य में तीर्थंकर होंगे। अभी अतीन्द्रिय आनन्द उसको भी है। जितना राग है, उतना वहाँ दुःख भी है। आहाहा! नरक में, पहली नरक में है। फिर भी अनुभव हुआ, उसका आनन्द भी है और जितने तीन कषाय बाकी है (उतना दुःख भी है)। संयोग का दुःख नहीं है। प्रतिकूल संयोग का दुःख नहीं है, दुःख तो अन्दर राग-द्वेष करे, वह दुःख है। प्रतिकूल संयोग या अनुकूल संयोग तो ज्ञेय है। सब चीज़, आत्मा के सिवा आत्मा ज्ञायक और वह सब ज्ञेय है। ज्ञेय के दो भाग करना कि यह ठीक है और अठीक है, वह मिथ्यात्व है। आहा..! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि अपने में एक वस्तु प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय हुआ है। **उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।** आहाहा! श्रेणिक

राजा जैसे सिर फोड़कर देह छूटा। क्षायिक समकिती थे। क्षायिक समकित। कोणिक उसे बचाने आया। कोणिक। पहले कोणिक ने उसे कैद में डाला था। फिर तो उसकी माँ ने कहा तो उसे बचाने आया। लेकिन इन्हें भ्रम हुआ कि ये मुझे मारने आ रहा है। समकिती है, लेकिन बाह्य में ख्याल नहीं रहे और भ्रम भी हो जाए।

मुमुक्षु :- कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती। उसके भ्रम हुआ। कोणिक ने उसे पहले कैद में रखा था। उसकी माता ने सब बात की। तेरा जन्म हुआ था। तेरे पिता को लेने आये थे। तू पेट में था। तो मुझे अन्दर ऐसा स्वप्न आता था कि श्रेणिक का खून पी लूँ, श्रेणिक का हृदय खाऊँ। इसलिए तेरा जन्म हुआ तो तुझे कूड़े के ढ़ेर में डाल दिया। जन्म लिया, उसी दिन कचरे के ढ़ेर में डाल दिया। उकरडा समझे? कचरे का ढ़ेर। वहाँ श्रेणिक आया। श्रेणिक को मालूम हुआ। उनको मालूम है कि इसे ऐसे स्वप्न आये थे, मुझे मारने के। वहाँ गये। जन्म के बाद का पहला दिन। वहाँ मुर्गियाँ थी। मुर्गियों ने चोंच मारी थी। इसलिए पीड़ा हो रही थी। श्रेणिक राजा हाथ में अंगुली लेकर चूसते थे। आहाहा! श्रेणिक राजा घर आये। फिर जब समकित प्राप्त किया... आहाहा! विकल्प आता है। लेकिन वह दुःख नहीं है। विकल्प का दुःख है, लेकिन जितना विकल्प से रहित हुआ उतना आनन्द है। कठिन बात है, प्रभु! आहा..!

श्रेणिक राजा अपने में क्षायिक समकित में थे। फिर कोणिक आया और सिर फोड़ा तो भी समकित में दोष नहीं है। चारित्र का दोष समकित में दोष लगाता नहीं। एक गुण का दोष दूसरे (गुण में) लगता नहीं। चारित्र का इतना दोष होने पर भी क्षायिक समकित में किंचित् भी फेरफार नहीं। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं कि **आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।** पुरुषार्थ बिना नहीं मिलेगा। क्रमबद्ध में आयेगा। आहाहा! क्रमबद्ध-सर्व द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध है। जिस समय जहाँ होनेवाली होगी, उस क्षेत्र को नरेन्द्र, जिनेन्द्र बदल नहीं सकते। जहाँ-जहाँ जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वह होगी, होगी और होगी। क्रमसर होगी। उसमें

फेरफार नहीं कर सकता। परन्तु ऐसा जिसकी श्रद्धा में आता है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। द्रव्य पर—ज्ञायक पर जाती है, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। क्रमबद्ध वस्तु है। कोई भी पर्याय आगे-पीछे होती नहीं। आगे-पीछे पर्याय होती नहीं। क्रमसर जो होनेवाली होती है, वह होती है। ऐसा जब निर्णय करने जाता है, (उसकी) आत्मा की ओर दृष्टि जाती है। तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। आहाहा!

दो बात कही थी। बहुत वर्ष से दो कह रहे हैं। एक तो, एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता नहीं। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। यह अंगुली इस अंगुली को छूती नहीं, उसको छूती नहीं। भगवान को कर्म छूते नहीं, कर्म को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! प्रत्येक आत्मा प्रत्येक समय में अपनी पर्याय करे, परन्तु पर की पर्याय के साथ कुछ नहीं। पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसा क्रमबद्ध (है)। और तीसरी गाथा। अपना द्रव्य दूसरे द्रव्य को चूमता नहीं। मूल पाठ है, संस्कृत है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को, एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। आत्मा परमाणु को छूता नहीं। परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं, कर्म आत्मा को छूता नहीं। आहाहा! तीसरी गाथा है, समयसार। वहाँ चुम्बन शब्द है। एक द्रव्य दूसरे को चूमता नहीं। चूमता नहीं अर्थात् स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। आहाहा! अरे..! ऐसी पूरी दुनिया। एक द्रव्य अनन्त द्रव्य के बीच में रहना, फिर भी वह दूसरे द्रव्य को छूता ही नहीं। आहाहा! ऐसी जब अन्दर दृष्टि होगी, तो दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। आहाहा!

मुमुक्षु :- दृष्टि भी जब अन्तर में जानेवाली होगी, तब जाएगी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- जानेवाली है, परन्तु पुरुषार्थ करे तब। अपने आप जाएगी? है क्रमबद्ध। क्रमसर होगा। परन्तु उस क्रमबद्ध में पुरुषार्थ है। क्रमबद्ध का निर्णय करने जाता है तो आत्मा पर दृष्टि पड़ती है, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। क्रमबद्ध पर्याय में होता है। पर्याय का निर्णय पर्याय से नहीं होता। सूक्ष्म बात है, प्रभु! पर्याय का निर्णय पर्याय से नहीं होता। पर्याय में निर्णय द्रव्य से होता है। निर्णय होता है पर्याय में, ध्रुव में नहीं। ध्रुव का निर्णय पर्याय में आता है। आहाहा! भाषा सूक्ष्म है, प्रभु! परन्तु मार्ग तो यह है। आहा..!

यह तो बहिन के वचनामृत पढ़ने को कहा। सबके पास पुस्तक भी है। आहाहा!

कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु, सद्‌गुरु के गम्भीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन करके... आहाहा! जो गूढ़ वाणी आये-एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं और सर्व द्रव्य की पर्याय के काल में ही पर्याय होगी, आगे-पीछे होगी नहीं। जैसे मोती के हार में जहाँ मोती है, वह वहाँ रहेगा; आगे-पीछे नहीं। वैसे भगवान आत्मा और प्रत्येक द्रव्य क्रमसर जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। आगे-पीछे नहीं। आघापाछी को क्या कहते हैं? आगे-पीछे। हमको हिन्दी बहुत नहीं आती। हम काठियावाड़ी हैं। आहाहा!

कहते हैं, **सच्चा मुमुक्षु,...** ज्ञानी ने गम्भीर बात कही हो, **मूल वस्तुस्वरूप समझ में आए, ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का...** आहाहा! **खूब गहरा मन्थन करके...** खूब गहरा मन्थन। आहाहा! अन्तर में उतरने का गहरा मन्थन करके अन्दर जाना, तब आत्मा का पता लगेगा। आहा..! कठिन बात है, प्रभु! कोई क्रिया अथवा पच्चीस-पचास उपवास कर ले, या दो-पाँच करोड़ रुपया देकर मन्दिर बना दे, कुछ नहीं है। धर्म-बर्म नहीं है। उसमें धर्म है नहीं। वह तो कहा था। हम नैरोबी गये थे न। ४५० तो वहाँ करोड़पति हैं, १५ तो अरबपति हैं। उन्होंने पैसा खर्च करके २५ लाख का मन्दिर बनाया। २५ लाख का मन्दिर। कहा, करोड़ का बनाओ तो भी धर्म नहीं है। और वह चीज़ तुमसे नहीं बनती। बनने की चीज़ के काल में जड़ की पर्याय होने के काल में वह बनती है, उसका आत्मा कर्ता नहीं। आहाहा! सब सुनते थे। बहुत प्रेमी थे। यहाँ के परिचित थे। इसलिए बहुत आग्रह किया तो गये न। यहाँ तो ९१ साल हुए। ९१। नौ और एक-९१ वर्ष। उनका आग्रह बहुत था। लोगों का प्रेम भी बहुत था। बहुत लोग। पैसा भी ... ६० लाख इकट्ठा हुआ। ६० लाख। उन्होंने इकट्ठा किया, प्रभावना के लिये। वह तो बाहर का शुभभाव है। उसमें कुछ भी धर्म का अंश (नहीं) है। मन्दिर बनवाना है, पच्चीस लाख का मन्दिर बनाना है, कहा, उसमें कुछ भी धर्म-बर्म नहीं है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन बनाये? बनने के काल में क्रमबद्ध में आयेगी, तब बनेगा। कठिन बात है, प्रभु! क्या हो? जिस समय आनेवाले हैं, उस समय पुद्‌गल आयेंगे। कारीगर से भी वह मकान बनता नहीं। आहाहा! कठिन काम है।

यहाँ तो आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान, उसके विकल्प में यदि दुःख लगे तो महापुरुषार्थ करके अन्दर में जाना। आहाहा! अपूर्व पुरुषार्थ और तीव्र पुरुषार्थ करके अन्दर में जाना। आहाहा! वह तो एक बार कहा था। जो कोई शुभभाव से सामायिक अंगीकार करते हैं, सामायिक अंगीकार करते हैं। समयसार में पाठ है। परन्तु शुभभाव को छोड़ते नहीं। स्थूल-स्थूल अशुभभाव संक्लेश को छोड़ते हैं, परन्तु शुभ स्थूल को छोड़ते नहीं। ऐसा पाठ है। उसको नपुंसक कहा है। क्लिव पाठ है, पाठ में क्लिव है, क्लिव मूल संस्कृत में है। आहाहा!

मुमुखु :- समझ में नहीं आया, आप क्या फरमा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं समझे ? आत्मा में... आहाहा! जब राग-शुभराग होता है, यह मन्दिर आदि बनवाने की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं, वह तो इसके परमाणु से बनने के काल में बनेगा। लेकिन बनानेवाले का भाव है, वह शुभ है। और वह शुभ है, वह दुःख है। आहाहा! दुःख है, उतना तो कहा, लेकिन भाषा थोड़ी कड़क है, उस शुभ में पुरुषार्थ करता है, वह नपुंसक है। ऐसा पाठ है। आहाहा! दो जगह पाठ है। पुण्य-पाप अधिकार और अजीव अधिकार, दो जगह है। क्लिव.. क्लिव। अपने वीर्य की रचना, भगवान आत्मा का वीर्य उसे कहते हैं, जड़ वीर्य से बच्चे पैदा होते हैं, वह जड़ मिट्टी धूल है, अपना अन्तर जो आत्मबल-वीर्य, उस वीर्य का सामर्थ्य क्या है ? कि अपने स्वरूप की रचना करे। पाठ है, समयसार। ४७ शक्ति में। वीर्य उसे कहते हैं कि अपने स्वरूप की रचना करे, (वह) वीर्य। आहाहा! ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता की रचना करे, वह वीर्य। शुभभाव की रचना करे, वह वीर्य नहीं। आहाहा! गजब बात है। शुभभाव करे, उसे नपुंसक कहने में आया है। क्योंकि नपुंसक में प्रजा होने की शक्ति नहीं है। ऐसे शुभभाव में धर्म की प्रजा होने की (शक्ति) नहीं है। आहाहा! पण्डितजी! कठिन लगे, मार्ग तो यह है, भाई!

ऐसा मनुष्यभव अनन्त काल के बाद मिला और चला जाएगा। इसकी तो राख हो जाएगी और सत्ता जाएगी। आत्मा की सत्ता का नाश नहीं होता। जिसे २५-५० साल पूरे हो गये, उसे २५-५० साल नहीं निकलेंगे। देह की तो राख हो जाएगी, आत्मा चला जाएगा, कहाँ जाएगा ? कुछ भान नहीं है। मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ। आहाहा! ऐसे आत्मा की

गति क्या होगी ? आहाहा ! यहाँ तो आत्मा की गति करने के लिये यह कहते हैं। पाटनीजी ! कठिन बात है, प्रभु ! आहाहा !

आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है, उसे प्रतिकूल संयोगों में भी... बराबर है। **रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मन्थन...** एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। गहरा गंभीर विचार करना पड़ेगा। यह अंगुली इसको छूती नहीं।

मुमुक्षु :- छू तो रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन कहता है ? इसको देखो। इसको देखते हैं तो छूती है, ऐसा लगता है, उसको देखे तो भिन्न है। देखने की दृष्टि अज्ञानी की संयोग पर है और संयोग से देखता है; इसलिए विरुद्ध दिखने में आता है। परन्तु वस्तु के स्वभाव से देखे तो उसे अविरुद्ध भासे। आहाहा ! ऐसी (बात) है, भाई !

दृष्टान्त। जल है, जल। अग्नि आयी, जल गरम हुआ। अब उसे देखने की दो दृष्टि। अज्ञानी ऐसा देखता है कि अग्नि आयी, इसलिए गरम हुआ। ज्ञानी देखते हैं कि उसके स्पर्शगुण की ठण्डी पर्याय थी, वह पलटकर गरम हुई है, अग्नि से नहीं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसका स्वभाव देखते हैं। बराबर है ? पण्डितजी ! दो चीज़ हुई न ? अग्नि और पानी। पहले पानी ठण्डा था, फिर गरम हुआ। अज्ञानी संयोग को देखता है कि अग्नि आयी और गरम हुआ। ज्ञानी वस्तु के स्वभाव को देखते हैं। स्पर्शगुण की पर्याय उष्णरूप से परिणमी है, वह अपने से परिणमी है। अपना स्वकाल क्रमबद्ध में आया उससे परिणमी है। अग्नि से उष्ण हुआ नहीं। अग्नि से पानी उष्ण हुआ नहीं, तीन काल में। अरे.. अरे.. ! ऐसी बातें।

मुमुक्षु :- अग्नि के बिना हो जाता ?

पूज्य गुरुदेवश्री :-अग्नि के बिना हो जाता है। उसका स्पर्शगुण है, ठण्डा पलटकर उष्ण होता है। निमित्त हो। निमित्त भले हो। लेकिन निमित्त से होता है, ऐसी बात नहीं है। कठिन बात है, भाई ! आहा.. ! साधारण बात तो पूरी दुनिया करती है। यह बाल अलौकिक है।

यहाँ वह कहते हैं, ऐसा ख्याल में आया कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं।

बिच्छु काटता नहीं। बिच्छु परद्रव्य है, शरीर परद्रव्य है। शान्ति से सुनना। बिच्छु की ओर दृष्टि करे तो बिच्छु भिन्न है, बिच्छु में है और यहाँ जो डंक लगा है, वह परमाणु की पर्याय में होनेवाला हुआ है, बिच्छु से नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

मुमुक्षु :- बिच्छु डंक नहीं मारता।

पूज्य गुरुदेवश्री :- डंक मारता है। डंक मारता है, उस समय उसमें रहता है। डंक पर को नहीं छूता। आहाहा! ऐसी बात है। आहा..! कोई भी एक द्रव्य—परमाणु में लो। शास्त्र में पाठ आता है। परमाणु में दो गुण चिकनाहट हो और दूसरे में चार गुण चिकनाहट हो, तो चार गुण हो जाता है। परन्तु वह चार गुण था, इसलिए चार गुण हुआ, इसलिए नहीं। अपनी पर्याय के क्रमबद्ध में चार गुण होनेवाली थी तो हुई है। चार गुण साथ में आया इसलिए चार गुण हुआ, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! गजब बात है! ३८ हुआ न? ४५। किसी ने लिखा है।

अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान। शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता॥ ४५॥

४५। **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।** आहाहा! बहिन के वचन है, अनुभवपूर्वक वचन है। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवपूर्वक। आहा..! सम्यग्दर्शन अर्थात् श्रद्धा मात्र नहीं। सम्यग्दर्शन अर्थात् पूरा द्रव्य पलट जाता है और जितने गुण की संख्या अनन्त-अनन्त है, वह सम्यग्दर्शन में सब अनन्त गुण का अंश व्यक्त-बाहर आता है। क्या कहा? जितने संख्या में गुण आत्मा में है, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त। एक-एक आत्मा में, एक-एक परमाणु में अनन्त-अनन्त (गुण है)। एक सेकेण्ड में असंख्य समय, ऐसे त्रिकाल समय है तीनों काल का, उससे अनन्तगुना गुण एक जीव में

है। आहाहा! समझ में आया? एक गुण भी दूसरे को–दूसरी चीज़ को छूता नहीं। अपनी परिणति में रहता है। आहाहा! कोई द्रव्य को उठा सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं, ४५ देखो!

अन्तर का तल खोजकर... आहाहा! अन्तर का तल–पाताल, पर्याय का पाताल। पर्याय जो ऊपर तिरती है। आधे मण (२० किलो) पानी हो और ऊपर तेल का बिन्दु डाले, पाँच–सात–दस बिन्दु, जल में प्रवेश नहीं करेगा, वह ऊपर रहेगा। ऐसे पर्याय चाहे जितनी भी हो, लेकिन ऊपर रहेगी, ध्रुव में नहीं प्रवेश करेगी। आहाहा! यहाँ कहते हैं, **अन्तर का तल...** पर्याय में अन्तर का तल खोजकर। आहाहा! क्या कहते हैं? वर्तमान निर्मल पर्याय, जो पर्याय राग पर अनादि से झुक गई है, ऐसे तो लोक में पूरी दुनिया पड़ी है, दुःखी, परन्तु उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, दूसरी पर्याय द्रव्य में से आती है और वही पर्याय द्रव्य में एकाकार होती है। आहाहा! तब यहाँ कहते हैं कि अन्तर का तल–उस पर्याय के पीछे–नीचे पूरा ध्रुव तल है। आहाहा! तल समझे? **अन्तर का तल खोजकर...** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ वीतरागमूर्ति त्रिकाल निरावरण, त्रिकाल अखण्ड, त्रिकाल एक; दो नहीं, एकरूप त्रिकाल। आहाहा! द्रव्य और पर्याय दो, ऐसा भी नहीं। त्रिकाल द्रव्य जो एकरूप है, आहा! उसका तल। उसका तल खोजकर। आहाहा! ऐसी बात।

आत्मवस्तु में दो भाग। एक पर्याय–अवस्था और एक ध्रुव। ध्रुव नित्य रहनेवाली चीज़ पलटती नहीं। ऊपर की अवस्था है, वह पलटती है–बदलती है। बदलती पर्याय के नीचे ध्रुव तल है। उस ध्रुव को यहाँ तल कहते हैं। पर्याय का तल है। आहा! अरे रे..! बहिन के वचन है। **अन्तर का तल खोजकर...** अन्तर का तल खोजकर। **आत्मा को पहिचान।** आहा..! अन्तर का तल। अतीन्द्रिय सहजानन्द स्वरूप प्रभु, अनन्त गुण का राशि। आहाहा! ढ़ेर। अनन्त गुण का ढ़ेर। ऐसे भगवान को अन्तर में खोज। बाह्य की क्रियाकाण्ड से नहीं मिलेगा। तेरा दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, मन्दिर का दर्शन और मन्दिर का गजरथ, जुलूस आदि से आत्मा बिल्कुल मिलेगा नहीं। आहाहा! उसमें कदाचित् राग की मन्दता हो तो शुभभाव है। शुभभाव को चैतन्य भगवान छूता नहीं। आहाहा! अन्दर में गहराई में जाकर, **अन्तर का तल खोजकर...** देखो! आहाहा! **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।**

शुभपरिणाम, धारणा... कोई शुभ परिणाम किये क्रियाकाण्ड के अथवा शास्त्र की धारणा की। **आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है'...** ऐसा उसको अभिमान हो जाता है। आहाहा! राग से दूर होकर अन्दर में उतर जाना है, यह पुरुषार्थ है। इस पुरुषार्थ की तो खबर नहीं और ऊपर में राग घटाये, शुभराग (करे) और शास्त्र की कुछ धारणा (कर ले), धारणा क्या, ग्यारह अंग का ज्ञान हो, तो भी कुछ आत्मज्ञान नहीं होता। आहा..! यहाँ कहते हैं कि, **थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर,...** थोड़ा बाह्य त्याग किया तो (मान लिया कि) मैंने बहुत किया। थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा।

आत्मा इस कपड़े को छू सकता नहीं और कपड़े को ले सकता नहीं। बाह्य चीज़ को आत्मा छोड़ सकता नहीं और दे सकता नहीं। क्योंकि बाह्य चीज़ को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! थोड़ी बाह्य चीज़ को छोड़ी और हो गये हम त्यागी। कठिन बात है, नाथ! तेरी चीज़ कोई अलौकिक है। बाहर से... चाँदमलजी थे न? उदयपुर। बहुत साल पहले की बात है। चाँदमलजी कहे, भगवान तीर्थंकर कपड़े उतारते हैं। तो उतार सके नहीं? कहा, नहीं। चाँदमलजी थे, उदयपुर। यहाँ आये थे। रहे थे। नग्न दिगम्बर जब होते हैं भगवान, तब कपड़े उतारते हैं। कहा कि, परचीज़ उतारनी और ओढ़नी, आत्मा में है ही नहीं। वह चीज़ उसके कारण से आयी है, उसके कारण से रही है और उसके कारण से हटती है। आहाहा! कठिन बात है। दिगम्बर दशा करे, तब कपड़ा छोड़ना पड़े। छोड़ना पड़े का अर्थ वह छूटने का पर्याय का काल है। उस क्रम में परमाणु उस प्रकार से छूटकर रहनेवाले थे। आत्मा ने उसे छोड़ा, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु :- भाव करे तो कपड़ा छूटे न?

पूज्य गुरुदेवश्री :- बिल्कुल नहीं। कल कहा था। आत्मा में एक शक्ति है। त्यागउपादानशून्यत्वशक्ति। क्या (कहा)? पर का त्याग और पर का ग्रहण, उसका विरुद्ध उपादान। त्यागउपादानशून्यत्व। पर का त्याग और पर के ग्रहण से आत्मा शून्य है। आहाहा! ऐसी शक्ति है अन्दर। ४७ शक्ति में। त्यागउपादानशून्यत्वशक्ति।

मुमुक्षु :- वह तो निश्चय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। निश्चय की अर्थात् सत्य बात। सत्य बात यह है,

बाकी सब उपचारिक बातें हैं। परन्तु उपचरित भी निश्चय हो तब। निश्चय बिना उपचार भी लागू नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसी बात है। कपड़ा छोड़ना या लेना, परद्रव्य का त्याग और ग्रहण। त्याग और ग्रहण। एक रजकण का भी त्याग और ग्रहण, आत्मा की शक्ति त्यागउपादान गुण है, उस गुण के कारण से पर का त्याग-ग्रहण का त्याग है। आहाहा! अभी तो पर से भिन्न है, उसके बदले थोड़ा कुछ छोड़ा तो हमने छोड़ा ऐसा माने। तेरी मान्यता में अन्तर है। ज्यादा से ज्यादा राग है, उसका नाश करे, ऐसा कहो तो कह सकते हैं। वह भी व्यवहारनय से। राग का नाश करना भी व्यवहारनय से। निश्चय से तो आत्मा आनन्द में रहता है, राग की उत्पत्ति होती नहीं, उसको राग का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा? आहा..! मार्ग सूक्ष्म है, बापू! अन्तर का मार्ग बहुत गूढ़ और गहरा है। आहाहा!

यहाँ यह कहा, कौन-सा है? ४५। **शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है।** आहा..! मैंने स्त्री छोड़ी, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा। ऐसे मैंने बहुत छोड़ा, यह बात ही झूठ है। उसने ग्रहण ही नहीं किया है तो छोड़े क्या? आहाहा! परचीज़ को कभी ग्रहण किया ही नहीं। ग्रहण-त्याग से शून्य है। उसका मैंने त्याग किया, वह तो मिथ्या अभिमान है। आहाहा!

अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए,... शास्त्र पढ़कर याद रह जाए। वैसे तो ग्यारह अंग याद रह गये। एक अंग में १८ हजार पद, और एक पद में ५१ करोड़ श्लोक, ऐसे-ऐसे ग्यारह अंग अनन्त बार कण्ठस्थ किये। आहाहा! ज्ञानस्वरूप जो आत्मज्ञान, उससे भिन्न है। आहाहा! यहाँ वह कहते हैं। **अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए,...** मैंने कुछ किया। **धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है;...** क्या कहते हैं? बाह्य त्याग में अभिमान होने का कारण (यह है कि) अगाध स्वरूप भगवान है, उसे देखा नहीं। अगाध स्वरूप महाप्रभु का है, वह दृष्टि में आया नहीं। अगाध सागर की नजर की अपेक्षा से नजर नहीं, इसलिए बाहर का अभिमान हो जाता है। आहाहा! क्या कहा? देखो! **क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का...** आहा..! करोड़ों श्लोक की धारण कर ले और किसी को ज्ञान भी नहीं हो। शिवभूति अणगार। मातुष-मारुष इतना भी याद

नहीं रहता था। अन्दर का भान था। आत्मा की पर्याय आनन्द है ... इतना भान था और केवलज्ञान प्राप्त किया है। इसलिए कुछ शब्दों का ज्ञान हो तो उसे ज्ञान कहते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! मातुष और मारुष चार शब्द याद नहीं रहते थे। अन्तर में अनुभव और आनन्द था। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, **वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;...** थोड़ी धारणा करके अभिमान हो जाए, थोड़ा त्याग करके अभिमान हो जाए। वस्तु का स्वरूप अगाध है, तीनों काल पर से रहित है, आहाहा! उसमें कोई कमी नहीं है। उसकी पर्याय का भी अन्दर प्रवेश नहीं है। राग तो अन्दर प्रवेश करता नहीं, परन्तु ऊपर की पर्याय ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। आहाहा! ऐसे अगाध स्वभाव का ख्याल नहीं है। इसलिए ऊपर-ऊपर के भाव में उसको अभिमान हो जाता है। **इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से...** धर्मी तो पूर्ण स्वरूप भगवान अन्दर पूर्ण स्वरूप, परमात्मा पूरा है... आहाहा! ऐसा **लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता।** धारणा आदि अंश है, उसमें नहीं अटकता।

पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ,... पूर्ण था, वह आया। उसमें नयी चीज़ क्या है? आहाहा! **इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता।** किसी भी चीज़ का। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)